1909 का मार्ले-मिन्टो अधिनियम

ब्रिटिश भारत के संवैधानिक विकास में मार्ले-मिन्टो अधिनियम 1909 की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ब्रिटिश सरकार ने इस अधिनियम द्वारा अपने लक्ष्यों को साधने का प्रयास किया। पहला लक्ष्य था 1892 के अधिनियम की कमियों को दूर कर कांग्रेस के नरमपंथी धड़े को संतुष्ट करना तथा दूसरा मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व देकर साम्प्रदायिकता जैसे नवीन तत्व से उभरते हुये नवीन उग्रवादी एवं क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की धारा को अवरुद्ध करना।

19 वी सदी के अंतिम दशक में अंग्रेजों के भेदभाव पूर्ण नीतियों को लेकर भारतीयों में काफी आक्रोश था। अभी तक सरकारी सेवाओं एवं शासन में भारतीयों की कोई भागीदारी नहीं थी। ऐसे में वायसराय लार्ड कर्जन की नीतियों ने आग में घी का काम किया। सर्वप्रथम उसने कलकत्ता नगर निगम को पूर्ण रूपेण सरकारी प्रभाव के अधीन बना दिया। नगर निगम के एक तिहाई सदस्य कम करके यूरोपीयों को बहुमत दे दिया। पाँच वर्ष बाद ऐसी ही नीति भारतीय विश्वविद्यालयों में भी लागू की गई। जिससे उसकी स्वतंत्रता जाती रही। उसी वर्ष 1904 ई में राजकीय रहस्य अधिनियम के अन्तर्गत विद्रोह की परिभाषा अधिक विस्तृत कर दी गई। परंतु सबसे बड़ी ठेस बंगाल विभाजन से लगी जिसको बंगाल की उभरती हुई राष्ट्रीयता पर एक बड़ा प्रहार माना गया। बंगालियों ने इसे विभाजनकारी षडयंत्र माना एवं उसके खिलाफ कई आन्दोलन किये।

जब अंग्रेज बंगाल विभाजन नहीं कर पाये तो उन्होंने एक नवीन तरकीब ढूंढी वह थी मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व देकर साम्प्रदायिकता का भारतीय राजनीति में बीज वपन करना

इसी बीच विचारों को लेकर कांग्रेस दो दलों में बंट गई। वह दल जिसने ब्रिटिश शासन के संवैधानिक विरुद्ध में आस्थाजताया नरमपंथी कहलाये। दूसरा दल जो लड़कर (विभिन्न आन्दोलनों द्वारा विरोध जताकर) अपना हक लेना चाहते थे वे उग्रपंथी कहलाये। इसके अलावे एक नवीन दल क्रांतिकारी दल था। जिसकी विचारधारा कुछ ज्यादा ही उग्र थी।

फूट के ऐसे ही वातावरण में अंग्रेजों ने अपने लिए दो लक्ष्य तय किये, पहला था विधान परिषदों में विस्तार देकर नरमपंथियों को संतुष्ट करना तथा दूसरा नवीन राष्ट्रवाद की धारा को अवरुद्ध या कमजोर करने के लिए साम्प्रदायिकता को भारतीय राजनीति में प्रवेश कराना। वस्तुतः इन्हीं लक्ष्यों को साधने के लिये ब्रिटिश सरकार ने 1909 में मार्ले-मिन्टो अधिनियम लाया।

इस अधिनियम में निम्न व्यवस्थायें थी—

(1) केन्द्रीय विधान परिषद के स्वरूप में विस्तार करते हुये अतिरिक्त सदस्यों की अधिकतम संख्या 60 कर दी गई। अतः विधान मंडल में कुल 69 सदस्य हो गये जिसमें 37 शासकीय एवं 32 अशासकीय सदस्य थे।

(क) शासकीय सदस्यों में 9 पदेन (Ex-officio) सदस्य थे जिनमें गवर्नर जनरल तथा उसके सात कार्यकारी परिषद (Executive Council Councillors) और एक असाधारण सदस्य था। शेष 28 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे।

(ख) 32 अशासकीय (गैर सरकारी) सदस्यों में से 5 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे और शेष 27 निर्वाचित।

27 में से 13 साधारण निर्वाचन मंडल से निर्वाचित होते थे जिनमें बम्बई, बंगाल, मद्रास तथा संयुक्त प्रान्त से दो दो कुल आठ तथा असम, बिहार तथा उड़ीसा, मध्य प्रांत, पंजाब, तथा बर्मा से एक-एक प्रतिनिधि निर्वाचित होते थे। शेष 14 में से 12 विशेष निर्वाचन मंडल से आते थे। इन वर्ग विशेष के प्रतिनिधियों में 6 का बम्बई, मद्रास, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त से एक एक सदस्य भूमिपतियों के निर्वाचन मंडल निर्वाचित करते थे। अन्य 6 पृथक निर्वाचन मंडल। क्षेत्र मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बिहार तथा उड़ीसा से एक-एक और बंगाल से दो निर्वाचित होते थे। शेष दो स्थान बम्बई तथा बंगाल के वाणिज्य मंडलों को दिये गये।

(2) प्रान्तीय विधान मंडलों में सदस्य संख्या बढ़ायी गई। अब बर्मा में 16, पूर्वी बंगाल एवं असम में 30, बंगाल में 52, मद्रास, बम्बई तथा संयुक्त प्रान्त प्रत्येक में 50 तथा पंजाब में 25 सदस्य होंगे। इन प्रान्तीय विधान मंडलों में अशासकीय सदस्यों को बहुमत दी गई, परंतु अभी भी मनोनीत सदस्यों की संख्या ज्यादा थी निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा।

(3) साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली आरंभ की गई और इसके अन्तर्गत मुसलमानों को अपना अलग प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया।

(4) विधान परिषदों के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की गई। सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। सदस्यों को बजट पर भी बहस करने के साथ प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया।

(5) सीमित मताधिकार दिया गया। केन्द्रीय विधान परिषद के चुनाव के लिये जमींदारों के चुनाव क्षेत्रों में केवल उन जमींदारों को मत देने का अधिकार था जिनकी आमदनी ज्यादा थी। मद्रास में यह अधिकार इनको दिया गया जिनकी आमदनी 15000 रुपये वार्षिक थी या जो

10,000 रुपये वार्षिक भूमि कर देते थे। बंगाल में यह अधिकार उनको दिया गया जिनके पास राजा या नवाब की उपाधि थी। मध्य प्रांत में यह अधिकार उनको दिया गया जो ऑनररी मजिस्ट्रेट थे।

(6) वायसराय की कौन्सिल में एक तथा भारत सचिव की कौंसिल में दो भारतीय सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था थी।

लेकिन जब हम अधिनियम के उपबन्धों पर समग्र दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि 1909 के सुधार के बाद भी भारतीय राजनैतिक प्रश्न ज्यों का त्यों बने रहे। इसके द्वारा भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं हुई। चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ भी किया गया तो वह अप्रत्यक्ष एवं सीमित था। यही कारण था कि केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधानमंडलों में अभी भी मनोनीत सदस्यों का बहुमत बना रहा। सदस्यों को कुछ अधिकार दिये भी गये लेकिन वे काफी कम थे। पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार मिला लेकिन अभी भी वे बजट पर कोई कटौती प्रस्ताव नहीं ला सकते थे। उत्तरदायित्व नहीं मिलने के कारण सदस्य सरकार की विवेकहीन तथा अनुत्तरदायी आलोचना करने लगे। इस तरह भारतीय नेताओं ने विधानमंडलों को सरकार की आलोचना करने का मंच बना लिया।

1909 के सुधारों से भारतीय राजनीति में कुछ समस्यायें भी उत्पन्न हुई। एक ऐसी ही समस्या मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों एवं मताधिकार की थी। मुसलमानों के राजनैतिक महत्व के लिये उन्हें न केवल पृथक सामुदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया अपितु उनको साम्राज्य की सेवा के लिये उन्हें अपनी संख्या से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका प्रतिफल यह हुआ कि देश के अन्य धार्मिक ईकाईयाँ भी साम्राज्य की अधिक अच्छी सेवा करने का दावा करने लगी। 1919 में सिक्खों

की माँग पर विशेष प्रतिनिधित्व मिल गया। यह अन्य जातियों एवं समुदायों के लिये हरी झंडी थी। आगे हरिजनों, आदिवासियों ईसाईयों, यूरोपियों तथा एंग्लो इंडियनों को भी 1935 के अधिनियम द्वारा पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। इस तरह शताब्दियों में विकसित राष्ट्रीय एकता एक ही चोट में समाप्त हो गई।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद 1909 का मार्ले-मिंटो सुधार एकदम से व्यर्थ नहीं था बल्कि 1892 के एक्ट से निश्चित रूप से ही यह बहुत आगे था। वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में एक तथा दो भारतीयों को भारत सचिव की कौंसिल में लिया गया। विधान मंडलों के स्वरूप में विस्तार देकर उनमें कुछ चुने हुये सदस्य लिये गये। 1892 के अधिनियम में जहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, नगर पालिकाओं, प्रान्तीय कौंसिलों, विश्वविद्यालय के सिनेटों, वाणिज्य संघों इत्यादि को केन्द्रीय विधान परिषद के लिये सदस्यों के नामों की सिफारिश करने का अधिकार था वहीं 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत इन्हें सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया गया। इस तरह अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त पहली बार स्वीकार किया गया। 1909 के सुधारों के तहत सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार मिला। पहले बजट पर मतदान करने और सार्वजनिक मामलों पर प्रस्ताव पास करने का अधिकार नहीं था परंतु 1909 के अधिनियम द्वारा यह अधिकार भी मिल गया। निश्चय ही इस अधिनियम ने सरकार की आलोचना करने तथा सुझाव देने का अवसर भारतीयों को दिया।

इस तरह 1909 के सुधारों ने देश को ऐसी अवस्था पर लाकर पहुँचा दिया जहाँ से पीछे जाना संभव नहीं था बल्कि आगे चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था। तभी तो 1917 में मान्टेग्यू को यह घोषणा करनी पड़ी कि ब्रिटिश सरकार की उद्देश्य धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार की स्थापना है।